री राम-दशरथ संवाद, अवधवासियों का विषाद, कैकेयी को समझाना

चौपाई :

*** अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥ सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥1॥

भावार्थ:

जब राजा ने सुना कि श्री रामचन्द्र पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले। मंत्री ने संभालकर राजा को बैठाया। राजा ने श्री रामचन्द्रजी को अपने चरणों में पड़ते (प्रणाम करते) देखा॥1॥

*** लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥ रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥2॥

भावार्थ:

स्नेह से विकल राजा ने रामजी को हृदय से लगा लिया। मानो साँप ने अपनी खोई हुई मणि फिर से पा ली हो। राजा दशरथजी श्री रामजी को देखते ही रह गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली॥2॥

*** सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥ बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥3॥

भावार्थ:

शोक के विशेष वश होने के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार श्री रामचन्द्रजी को हृदय से लगाते हैं और मन में ब्रह्माजी को मनाते हैं कि जिससे श्री राघुनाथजी वन को न जाएँ॥3॥

*** सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥ आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥4॥

भावार्थ:

फिर महादेवजी का स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं- हे सदाशिव! आप मेरी विनती सुनिए। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) और अवढरदानी (मुँहमाँगा दे डालने वाले) हैं। अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःख को दूर कीजिए॥4॥

दोहा :

*** तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु। बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥44॥

भावार्थ:

आप प्रेरक रूप से सबके हृदय में हैं। आप श्री रामचन्द्र को ऐसी बुद्धि दीजिए, जिससे वे मेरे वचन को त्यागकर और शील-स्नेह को छोड़कर घर ही में रह जाएँ॥44॥

चौपाई :

*** अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ॥ सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥1॥

भावार्थ:

जगत में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाए। चाहे (नया पाप होने से) मैं नरक में गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाए (पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप मिलने वाला स्वर्गचाहे मुझे न मिले)। और भी सब प्रकार के दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें। पर श्री रामचन्द्र मेरी आँखों की ओट न हों॥1॥

*** अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥ रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥2॥

भावार्थ:

राजा मन ही मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है। श्री रघुनाथजी ने पिता को प्रेम के वश जानकर और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी (तो पिताजी को दुःख होगा)॥2॥

*** देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥ तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥3॥

भावार्थ:

देश, काल और अवसर के अनुकूल विचार कर विनीत वचन कहे- हे तात! मैं कुछ कहता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ। इस अनौचित्य को मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमाकीजिएगा॥3॥

*** अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥ देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥4॥

भावार्थ:

इस अत्यन्त तुच्छ बात के लिए आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसी ने पहले कहकर यह बात नहीं जनाई। स्वामी (आप) को इस दशा में देखकर मैंने माता से पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग शीतल हो गए (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)॥4॥

दोहा :

*** मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात। आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥45॥

भावार्थ:

हे पिताजी! इस मंगल के समय स्नेहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिए और हृदय में प्रसन्न

होकर मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजीसर्वांग पुलकित हो गए॥45॥

चौपाई :

*** धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥ चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥1॥

भावार्थ:

(उन्होंने फिर कहा-) इस पृथ्वीतल पर उसका जन्म धन्य है, जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनंद हो, जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठी में) रहते हैं॥1॥

*** आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई॥ बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥2॥

भावार्थ:

आपकी आज्ञा पालन करके और जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः कृपया आज्ञा दीजिए। माता से विदा माँग आता हूँ। फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वन को चलूँगा॥2॥

*** अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥ नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥3॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर तब श्री रामचन्द्रजी वहाँ से चल दिए। राजा ने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगर भर में इतनी जल्दी फैल गई, मानो डंक मारते ही बिच्छू का विष सारे शरीर में चढ़ गया हो॥3॥

*** सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥ जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥4॥

भावार्थ:

इस बात को सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गए जैसे दावानल (वन में आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है, वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है! बड़ा विषाद है, किसी को धीरज नहीं बँधता॥4॥

दोहा :

*** मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ। मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥46॥

भावार्थ:

सबके मुख सूखे जाते हैं, आँखों से आँसू बहते हैं, शोक हृदय में नहीं समाता। मानो करुणा रस की सेना अवध पर डंका बजाकर उतर आई हो॥46॥

चौपाई :

*** मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥ एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥1॥

भावार्थ:

सब मेल मिल गए थे (सब संयोग ठीक हो गए थे), इतने में ही विधाता ने बात बिगाड़ दी! जहाँ-तहाँ लोग कैकेयी को गाली दे रहे हैं! इस पापिन को क्या सूझ पड़ा जो इसने छाए घर पर आग रख दी॥1॥

*** निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥ कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी॥2॥

भावार्थ:

यह अपने हाथ से अपनी आँखों को निकालकर (आँखों के बिना ही) देखना चाहती है और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है! यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिए अग्नि हो गई!॥2॥

*** पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥ सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥3॥

भावार्थ:

पत्ते पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला। सुख में शोक का ठाट ठटकर रख दिया! श्री रामचन्द्रजी इसे सदा प्राणों के समान प्रिय थे। फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी॥3॥

*** सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥ निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥4॥

भावार्थ:

कवि सत्य ही कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य, अथाह और भेदभरा होता है। अपनी परछाहीं भले ही पकड़ जाए, पर भाई! स्त्रियों की गति (चाल) नहीं जानी जाती॥4॥

दोहा :

*** काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ। का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥47॥

भावार्थ:

आग क्या नहीं जला सकती! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! अबला कहाने वाली प्रबल स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती! और जगत में काल किसको नहीं खाता!॥47॥

चौपाई :

*** का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥ एक कहहिं भल भूप न कीन्हा।

बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥1॥

भावार्थ:

विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है! एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, दुर्बुद्धि कैकेयी को विचारकर वर नहीं दिया॥1॥

*** जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु॥ एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने॥2॥

भावार्थ:

जो हठ करके (कैकेयी की बात को पूरा करने में अड़े रहकर) स्वयं सब दुःखों के पात्र हो गए। स्त्री के विशेष वश होने के कारण मानो उनका ज्ञान और गुण जाता रहा। एक (दूसरे) जो धर्म की मर्यादा को जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते॥2॥

*** सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥ एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायँ सुनि रहहीं॥3॥

भावार्थ:

वे शिबि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा एक-दूसरे से बखानकर कहते हैं। कोई एक इसमें भरतजी की सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीन भाव से रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं)॥3॥

*** कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥ सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपिआरे॥4॥

भावार्थ:

कोई हाथों से कान मूँदकर और जीभ को दाँतों तले दबाकर कहते हैं कि यह बात झूठ है, ऐसी बात कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जाएँगे। भरतजी को तो श्रीरामचन्द्रजी प्राणों के समान प्यारे हैं॥4॥

दोहा :

*** चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल। सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल॥48॥

भावार्थ:

चन्द्रमा चाहे (शीतल किरणों की जगह) आग की चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विष के समान हो जाए, परन्तु भरतजी स्वप्न में भी कभी श्री रामचन्द्रजी के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे॥48॥

चौपाई :

*** एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥ खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥1॥

भावार्थ:

कोई एक विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगर भर में खलबली

मच गई, सब किसी को सोच हो गया। हृदय में दुःसह जलन हो गई, आनंद-उत्साह मिट गया॥1॥
*** बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥ लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं ताहीं॥2॥
भावार्थ:
ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी की परम प्रिय थीं, वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाण के समान लगते हैं॥2॥
*** भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना॥ करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू॥3॥
भावार्थ:
(वे कहती हैं-) तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्री रामचंद्र के समान मुझको भरतभी प्यारे नहीं हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है। श्री रामचंद्रजी पर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करती रही हो। आज किस अपराध से उन्हें वन देती हो?॥3॥
*** कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति परीति जान सबु देसू॥ कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥4॥
भावार्थ:
तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। अब कौसल्या ने तुम्हारा कौन सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगर पर वज्र गिरा दिया॥4॥
दोहा :
*** सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु करहिहहिं धाम। राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥49॥
भावार्थ:
क्या सीताजी अपने पति (श्री रामचंद्रजी) का साथ छोड़ देंगी? क्या लक्ष्मणजी श्री रामचंद्रजी के बिना घर रह सकेंगे? क्या भरतजी श्री रामचंद्रजी के बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे? और क्या राजा श्री रामचंद्रजी के बिना जीवित रह सकेंगे? (अर्थात् न सीताजी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मणजी रहेंगे, न भरतजी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे, सब उजाड़ हो जाएगा।)॥49॥
चौपाई :
*** अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू॥ भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥1॥
भावार्थ:
हृदय में ऐसा विचार कर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो। भरत को अवश्य युवराजपद दो, पर श्री रामचंद्रजी का वन में क्या काम है?॥1॥

*** नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥ गुर गृह बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचंद्रजी राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्म की धुरी को धारण करने वाले और विषय रस से रूखे हैं (अर्थात् उनमें विषयासक्ति है ही नहीं), इसलिए तुम यह शंका न करो कि श्री रामजी वन न गए तो भरत के राज्य में विघ्न करेंगे, इतने पर भी मन न माने तो) तुम राजा से दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि श्री राम घर छोड़कर गुरु के घर रहें॥2॥

*** जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥ जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥3॥

भावार्थ:

जो तुम हमारे कहने पर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यदि तुमने कुछहँसी की हो तो उसे प्रकट में कहकर जना दो (कि मैंने दिल्लगी की है)॥3॥

*** राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू॥ उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥4॥

भावार्थ:

राम सरीखा पुत्र क्या वन के योग्य है? यह सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे! जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपाय से इस शोक और कलंक का नाश हो॥4॥ छंद :

*** जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही। हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥ जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमिजामिनी। तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझि धौं जियँ भामनी॥

भावार्थ:

जिस तरह (नगरभर का) शोक और (तुम्हारा) कलंक मिटे, वही उपाय करके कुल की रक्षा कर। वन जाते हुए श्री रामजी को हठ करके लौटा ले, दूसरी कोई बात न चला। तुलसीदासजी कहते हैं- जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और चंद्रमा के बिना रात (निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाती है), वैसे ही श्री रामचंद्रजी के बिना अयोध्या हो जाएगी, हे भामिनी! तू अपने हृदय में इस बात को समझ (विचारकर देख) तो सही। सोरठा :

*** सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित। तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥50॥

भावार्थ:

इस प्रकार सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मीठी और परिणाम में हितकारी थी। पर कुटिला कुबरी की सिखाई-पढ़ाई हुई कैकेयी ने इस पर जरा भी कान नहीं दिया॥50॥

चौपाई :

*** उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥ ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥1॥

भावार्थ:

कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोध के मारे रूखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो। तब सखियों ने रोग को असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मंदबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चलदीं॥1॥

*** राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥ एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं॥2॥

भावार्थ:

राज्य करते हुए इस कैकेयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा! नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं॥2॥

*** जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥ बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥3॥

भावार्थ:

लोग विषम ज्वर (भयानक दुःख की आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसें लेते हुए वेकहते हैं कि श्री रामचंद्रजी के बिना जीने की कौन आशा है। महान् वियोग (की आशंका) से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गई है मानो पानी सूखने के समय जलचर जीवों का समुदाय व्याकुल हो!॥3